प्रवचन-२३, श्लोक-२७, गाथा-१५, बुधवार, फाल्गुन कृष्ण १२, दिनांक २४-०३-१९७१

नियमसार, जीव अधिकार, १५वीं गाथा। अन्तिम भाग रह गया था।

इस १५वीं गाथा में अधिकार स्वभावपर्याय और विभावपर्याय (का चलता है)। अर्थात् कि आत्मा तो द्रव्य और गुण से तो ध्रुव है। उसमें स्वभावपर्याय भी एक ध्रुव है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। वस्तु स्वयं आत्मा, सत् ध्रुवरूप से, द्रव्यरूप से अनादि-अनन्त है। अनन्त गुण भी अनादि-अनन्त है। उसमें उसकी एक पर्याय, स्वाभाविक पर्याय, ध्रुवपर्याय, वह भी अनादि-अनन्त है। उसका आश्रय करने से धर्म होता है। समझ में आया? वस्तु शुद्ध चैतन्यपदार्थ, उसकी शक्ति ध्रुव, गुण और उसकी कारणपर्याय, वह भी ध्रुव है। उसका आश्रय करने से, उसकी दृष्टि करने से, धर्म अर्थात् आत्मा को शान्ति मिले। इससे उसे जन्म-मरण टले। दूसरी कोई रीति है नहीं। समझ में आया?

स्वभावपर्याय के दो प्रकार लिये न? कारणस्वभावपर्याय, त्रिकाल; एक, कार्यस्वभावपर्याय, यह केवलज्ञान आदि। केवलज्ञान, केवलदर्शन, ये सब कार्यस्वभावपर्यायहें हैं? यह उसका फल है। फल आया था न? फल आया था कहीं? परन्तु फल कहाँ आया था? बराबर ऐसा नहीं। फलरूप, बस यह। तुम बहिया पढ़नेवाले कहलाते हो न इसलिए।

आत्मा, जिसे धर्म करना है, अर्थात् कि जिसकी दशा में अनादि अधर्म है, उसे धर्म करना हो तो वह धर्म स्वभाव वस्तु में पड़ा हुआ है। समझ में आया? जो धर्म करना है - ऐसी जो निर्मल पर्याय, उन सब स्वभावों-अनन्त पर्यायों का पिण्ड, वे तो वस्तु में पड़ी है। वस्तु स्वयं अनादि-अनन्त सत् पदार्थ है। ऐसे उसके गुण अनादि-अनन्त सत् हैं, ऐसे उसकी पर्याय भी कारणपर्याय अनादि-अनन्त शुद्धनिश्चय से सत् है। भारी सूक्ष्म, भाई!

मुमुक्षु : कारणपर्याय का आश्रय लेना या परमपारिणामिकभाव का?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब एक ही हो गया। उसका आया, इसलिए सबका आ गया न? तीनों इकट्ठे हैं, भिन्न कहाँ है? समझ में आया? ऐसी पूजनीय परिणति त्रिकाल, उसके सन्मुख का अन्तर्मुख मनन, ध्यान और ध्येय को पकड़कर लीनता, उसका नाम धर्म है। उसे वीतरागधर्म कहते हैं। बाकी बीच में यह दया, दान, व्रत, और भक्ति आदि के परिणाम हों, वह धर्म नहीं, वह धर्म नहीं।

इस अनन्त कारणपर्याय का फल, अनन्त अन्तर्मुख होने से **अनन्त चतुष्टय के साथ की (अनन्त चतुष्टय के साथ तन्मयरूप से रहनेवाली) जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति,...** उसका वेदन, अनुभव, उसे मोक्षपर्याय अथवा कार्यशुद्धपर्याय कहते हैं। अरे! बस, यह तो आ गया है। पहली बात आ गयी है। उसे यहाँ कहते हैं। **अथवा** स्वभावपर्याय उसे भी कहा जाता है। षटगुण-हानि-वृद्धि पहले आ गयी। १४वीं गाथा में (आ गयी)। **अथवा, पूर्व सूत्र में कहे हुए सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से,...** सूक्ष्म बात है, भगवान! इसकी पर्याय में सूक्ष्म एक समय के षट्गुण हानि-वृद्धिवाली पर्याय होती है। यद्यपि वह भी पर्याय है; द्रव्य में वह नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म ऋजु-वर्तमान आत्मद्रव्य की वर्तमानदशा में सूक्ष्म ऋजु अर्थात् एक समय के परिणाम को सीधे देखना, ऐसे **अभिप्राय से, छह द्रव्यों को साधारण...** वह पर्याय है। अर्थपर्याय छह द्रव्यों में (साधारण है)। भगवान तीर्थंकर ने छह द्रव्य देखे हैं। उन प्रत्येक द्रव्य में यह षट्गुण-हानि-वृद्धिवाली पर्याय अवस्था में है। **छह द्रव्यों को साधारण...** है, अर्थात् सबमें है।

सूक्ष्म—ऐसी वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना... उन्हें शुद्धपर्यायें जानना। वह कारणशुद्धपर्याय है, वह तो बात की। परन्तु इसे भी शुद्धपर्याय जानना। यह शुद्धपर्याय जो है, वह व्यवहारनय का विषय है और कारणशुद्धपर्याय है, वह निश्चयदृष्टि द्रव्यार्थिक का विषय है।

मुमुक्षु : हानि-वृद्धिवाली....

पूज्य गुरुदेवश्री : हानि-वृद्धिवाली व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है न! आहा..हा..! समझ में आया?

(इस प्रकार) शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप में कहे। लो।

मुमुक्षु : सब ओर से शुद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धपर्याय-अर्थपर्याय छहों द्रव्यों में। सिद्ध में भी है। जाननेयोग्य है। आदरणीय तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया?

अब, व्यंजनपर्याय कही जाती है। वह अर्थपर्याय कही अथवा कारणपर्याय कही अथवा कार्यपर्याय कही। **अब, व्यंजनपर्याय कही जाती है। जिससे व्यक्त हो-प्रगट हो, वह व्यंजनपर्याय है। किस कारण?** वस्त्रादि ऐसे बाहर में दिखायी देते हैं न, ऐसे आकार

वस्त्र का, पात्र का, किसी चीज़ का ऐसे आकार दिखायी देता है, देखो! बाहर में यह आकार दिखायी देता है न, उस आकार का व्यंजनपर्याय कहा जाता है। वह **चक्षुगोचर होने से...** वह आकार चक्षु को गम्य है। **(प्रगट होती है)...** वे अवस्थायें—समय-समय में व्यंजन आकृति की पर्याय छह द्रव्यों में प्रगट होती है।

अथवा, सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से,... अब, वह व्यंजनपर्याय, इस आत्मा की विकारी व्यंजनपर्याय। यह मनुष्यगति, देवगति आदि है न? वे सादि-सान्त हैं। वह आकृति-चार गति की पर्याय उत्पन्न होती है और नाश होती है। वह **सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से, दिखकर नष्ट होनेवाले स्वरूपवाली होने से (प्रगट होती है)।** शरीर का आकार लिया, भाई! शरीर का आकार मूर्त है न, मूर्त? विजातीय है न? चैतन्य से भिन्न। उसे जीव की आकृति है।...परन्तु उसके शरीर की आकृति यह होवे न? यह शरीर-मिट्टी की, यह मूर्त है - जड़ है; चैतन्य से विजातीय है। इस जड़ का आकार, चैतन्य अरूपी भगवान से विजाति है। वह **विजातीय-विभावस्वभाववाली होने से, दिखकर नष्ट होनेवाले स्वरूपवाली होने से (प्रगट होती है)।** समय-समय में शरीर की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ जड़ में, जड़ की होती हैं। कल नीचे नोट (फुटनोट) रह गया था। प्रश्न हुआ था, नहीं? मनहर या कोई कहता था। नीचे नोट है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ की आकृति यह....

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...ले लेना। नीचे है नोट।

सहजज्ञानादि स्वभाव-अनन्त चतुष्टययुक्त.... है नीचे? भगवान आत्मा वस्तु है। उसमें स्वाभाविक ज्ञान आदि-अनन्त चतुष्टयसहित कारणशुद्धपर्याय में से.. वह सहित आया था न पाठ में? अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की - ऐसा था न? इसलिए यहाँ अनन्त चतुष्टयसहित (कहा है)। भगवान आत्मा वस्तु है। उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य अथवा सुख, यह अनन्त चतुष्टय ध्रुवरूप से आत्मा में अनादि पड़े हैं। इसकी खान में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त बल, अनन्त वीर्य आदि वह सामान्य ध्रुवरूप से आत्मा के स्वभाव में पड़े हैं। आहा..हा..!

यह ***अनन्त चतुष्टययुक्त कारणशुद्धपर्याय....*** कारणशुद्धपर्याय जो त्रिकाली अनादि-अनन्त निर्मल ध्रुव, उसमें से ***केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टययुक्त कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है।*** लो, समझ में आया? केवलज्ञान, केवलदर्शन अरिहन्त भगवान को - परमेश्वर को प्रगट होते हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, विभुता सर्वव्यापक पर्याय अन्दर में—अनन्त में, ऐसी जो अनन्त पर्यायें प्रगट होती हैं, वे सब स्वभाव की अन्तर एकाग्रता से प्रगट होती है। अन्तर में से प्रगट होती हैं। है न? पर्याय में से प्रगट होती है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यह। यह तो त्रिकाली पर्याय कही न! वह कहाँ वर्तमान पर्याय में से पर्याय आती है? समझ में आया? वर्तमान पर्याय जो प्रगट है, उसमें से नयी पर्याय नहीं होती। यह तुम्हारा प्रश्न किया। 'पालीताणा' कहा था। प्रश्न पूछा था न कि पर्याय में से पर्याय होती है? तो कहा - हाँ! क्यों? कि दस परमाणु में से पंच परमाणु का स्कंध हो, वह पर्याय में से पर्याय हुई, ऐसा जवाब दिया था। कुछ खबर नहीं होती। बड़े आचार्य (कहलाते हैं)। समझ में आया? दस परमाणु हैं न? ये दस रजकण हैं। यह तो स्थूल है, परन्तु इसका पोईन्ट, अन्तिम रजकण, अन्तिम टुकड़ा, अन्तिम। एक, दो तीन - ऐसे दस परमाणु का पिण्ड हो, वह विभाविक पर्याय है और फिर पाँच परमाणु इकट्ठे हों तो पन्द्रह परमाणुओं का स्कंध हो। देखो, पर्याय में से पर्याय हुई या नहीं? कहाँ हुई पर्याय में से पर्याय? तर्क तो क्या करें अब? वह तो दस परमाणुओं की पर्याय का स्कन्ध था, उसका व्यय होकर, पाँच इकट्ठे होकर उत्पादरूप से पन्द्रह परमाणु के स्कन्ध की पर्याय उत्पन्न हुई। नयी हुई। पर्याय में से पर्याय कहाँ से आयी? अरे! मूल तत्त्व की बात की खबर नहीं होती और यह धर्म.. धर्म.. धर्म.. जगत में चलता है। धूल में भी कहीं धर्म नहीं। शत्रुंजय में नहीं और सम्मेदशिखर में भी नहीं।

मुमुक्षु : पर में कहाँ है....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाश्रय में भी नहीं और मन्दिर में भी नहीं।

मुमुक्षु : यहाँ तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में है। समझ में आया? आत्मा अनन्त आनन्द आदि

स्वभाव, उसकी जो कारणपर्याय, उसमें से यह पर्याय प्रगट होती है, ध्रुव में से यह पर्याय उत्पाद होती है।

मुमुक्षु : यह पर्याय तो अमूर्त और वह मूर्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों अमूर्त हैं। दोनों अमूर्त हैं। केवलज्ञान पर्याय अमूर्त है। यह तो आ गया न! यहाँ शुद्ध चलता है। वह अन्दर आ गया न? सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय। व्यंजनपर्याय दूसरी। वह बात यहाँ नहीं है। नीचे तो अन्दर अर्थपर्याय जो त्रिकाल। आहा..हा..!

कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होती है। कान्तिभाई ने कल प्रश्न किया था न! मनन करने से... कल पूछा था न? वह इसमें मनन करने से नहीं। उस नियमसार में 'मनन करने से' शब्द पड़ा है - भाई में—शीतलप्रसादजी में। शीतलप्रसादजी में है, खबर है। उसमें है। कारणशुद्धपर्याय का मनन करने से—ऐसा शब्द वहाँ शीतलप्रसादजी में पड़ा है। उस दिन पढ़ा था, पुरानी पुस्तक में। यहाँ नहीं रखी? कल रखी थी। मनन का अर्थ कि अन्तर एकाग्रता। वापस कोई मनन का ऐसा अर्थ कर डाले कि विकल्प से ऐसे चिन्तवन करे (तो) ऐसा नहीं है। अन्तर आनन्दमूर्ति भगवान शुद्ध आनन्द का धाम आत्मा है, उसमें अन्दर स्थिर हो जाना। उसमें से उसे केवलज्ञान आदि प्रगट होते हैं। कहो, समझ में आया?

पूजनीय परमपारिणामिकभावपरिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्ध क्षायिकभावपरिणति, वह कार्यशुद्धपर्याय है। ऐ... प्रकाशदासजी! कभी सुनी भी नहीं, इसलिए समझने में कठिन पड़े, ऐसी बात है। यह आत्मा वस्तु है न? वस्तु। अस्ति है न? सत्तावाला पदार्थ है। यह शरीर, वह तो मिट्टी जड़ है। इसकी सत्ता तो जड़ है। इसकी सत्ता का अस्तित्व चैतन्य में नहीं है और चैतन्य की सत्ता के कारण यह सब सत्तावाली चीज़ें हैं, ऐसा नहीं है। यह तो भिन्न-भिन्न चीज़ें हैं। जड़ मिट्टी है, धूल है। आत्मा एक सत्तावाली, अस्तित्ववाली चीज़ भगवान अन्दर है। उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप से, ध्रुवरूप से पड़े हैं। ऐसे अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द के चतुष्टय-चार स्वरूपसहित अनादि-अनन्त, समुद्र की सपाटी की भाँति कारणशुद्धपर्याय जो ध्रुव है, उसमें एकाग्र होने से परिणाम को परिणामी में एकाकार करने से इसे धर्म की पर्याय प्रगट हुई और पूर्ण पर्याय केलवज्ञानादि प्रगट होते हैं। ऐसी बात है। आहा..हा..! समझ में आया?

अब इस ओर आया। ३९ पृष्ठ पर। **पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना...** क्या कहते हैं ? पर्यायी अर्थात् पर्याय का धारक, ऐसा व्यवहार से तो यहाँ कहना है न! ऐसा द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा। पर्यायी आत्मा अर्थात् पर्यायवाला द्रव्य आत्मा, ऐसा। भगवान आत्मा **पर्यायी...** अर्थात् द्रव्यस्वभाववाला आत्मा, उसके **ज्ञान बिना...** वस्तु भगवान शुद्धचैतन्य द्रव्य ध्रुव, नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। केवलज्ञानी तीर्थंकर को वह प्रगट हुआ है। वह अवस्था अन्दर में थी, उसमें से प्रगट हुई है, वह कहीं बाहर से नहीं आती। समझ में आया ? ऐसा जो भगवान आत्मा, **पर्यायी आत्मा...** ऐसा। पर्यायी अर्थात् द्रव्य आत्मा, ऐसा। पर्याय आत्मा नहीं, परन्तु **पर्यायी आत्मा...** अर्थात् द्रव्य आत्मा। पर्याय का धारण करनेवाला आत्मा, यह जरा कठिन पड़े, इसलिए ऐसा कर डाला। जैसे पर्याय को धारण करनेवाला, फिर द्रव्य, पर्याय को धारण करता है। प्रमाण की अपेक्षा से वह बराबर है। प्रमाण की अपेक्षा से द्रव्य, पर्याय को धारण करता है, इस अपेक्षा से बराबर है, परन्तु निश्चय की अपेक्षा से द्रव्य, पर्याय को धारण नहीं करता। बहुत सूक्ष्म, बहुत। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। अभी तो सब गप्प चलती है चारों ओर। समझ में आया ? मूलमार्ग छोड़कर अन्यत्र (चलने लगे हैं।) आहा..हा.. ! **पर्यायी...** अर्थात् द्रव्य। पर्यायवाला। वापस ऐसा कहा। द्रव्य।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पर्यायवाला-ऐसा कहना, वह व्यवहार है, ऐसा। परन्तु वास्तव में वह पर्यायवाला अर्थात् ? पर्याय जिसकी अवस्था में है, ऐसा जो द्रव्य। आत्मा में आनन्द है, वह आनन्द त्रिकाली है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का रस छलाछल भरा है। आहा..हा.. ! वह पर्यायी आत्मा। समझ में आया ? उसकी दशा में, हालत में प्रगट होता है, वह तो पर्याय है, वह अवस्था है।

जैसे चौंसठ पहरी पीपर में चरपराहट भरी है। वह चौंसठ पहरी पूरी-पूरी भरी है, उसमें से प्रगट होती है। उसमें से प्रगट होती है, वह पर्याय है। चौंसठ पहरी बाहर प्रगट होती है न ? उसी प्रकार यह आत्मा, चौंसठ अर्थात् रुपया-रुपया, पूर्ण आनन्द का धाम आत्मा है। उसमें अनन्त आनन्द है। जिसका स्वभाव है, उसकी मर्यादा क्या होगी ? उसके क्षेत्र का छोटापन देखकर उसके भाव का छोटापन जानना, यह भ्रम है। समझ में आया ?

उसका क्षेत्र शरीर प्रमाण भिन्न है। इतना क्षेत्र है, इसलिए उसका भाव अपरिमित नहीं और परिमित है, ऐसा नहीं है। पण्डितजी! आहा..हा..!

भगवान आत्मा अपने स्वक्षेत्र में है। इस शरीर के रजकण में वह नहीं। वह तो अन्दर भिन्न चीज़ है। यह (शरीर) तो मिट्टी है। अजीव, धूल, मिट्टी परमाणु पुद्गल है। उसमें आत्मा नहीं और आत्मा में वह नहीं। आत्मा में तो अनन्त ज्ञान-आनन्द आदि धामस्वरूप भगवान परिपूर्ण छलाछल भरा हुआ है परन्तु राग और निमित्त और एक समय की पर्याय की एकता में उसे भगवान आत्मा दिखायी नहीं देता। समझ में आया? अनादि से धर्म के नाम पर जैन का साधू हुआ, दिगम्बर हुआ, मुनि हुआ, जंगल में रहा, पंच महाव्रत पालन किये परन्तु वह सब एक समय की पर्याय की क्रीड़ा में रमता था। उस पर्यायरहित पूरा द्रव्य है, ऐसी उस पर इसकी दृष्टि की नहीं। आहा..हा..!

पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना... भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दधाम, जिसके आनन्द को लेने के लिए कहीं बाहर में आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! जिसे धर्म करने के लिए बाहर के किसी आश्रय और अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है। उसे धर्म करने के लिए द्रव्य के अवलम्बन की आवश्यकता है, ऐसा कहते हैं। यह बातें जरा समझनेयोग्य हैं। बाकी पर्याय स्वयं है, वह कहती है कि मैं तेरा अवलम्बन नहीं लेती। मैं एक सत् हूँ। यह तो पराश्रय में से निकालने को यहाँ अवलम्बन लेती है, ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : झुकाव वहाँ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का झुकाव होता है न! इस अपेक्षा से वहाँ द्रव्य का अवलम्बन लिया, (ऐसा कहा जाता है)। बाकी पर्याय, वह सत् है या नहीं? यह प्रभु महासत् है तो वह भी क्षणिक सत् है। क्षणिक सत् भी द्रव्य सत् का अवलम्बन नहीं लेती। आहा..हा..! अवलम्बन अर्थात्? उसका आश्रय ले ले तो दोनों एक हो जाते हैं। भिन्न रहकर, द्रव्य पर ध्येय करके पर्याय प्रगट होती है। यह किस प्रकार का धर्म?

मुमुक्षु : अरे! प्रभु वीतराग का आपने दर्शाया, बापू!

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कहे, ऐसा जैनधर्म होगा? भाई! जैनधर्म तो यह हरितकाय न खाना, कन्दमूल न खाना, रात्रि भोजन न करना, अमुक... अभी तक तो ऐसा सुना था। अष्टमी, चतुर्दशी, पर्व के अपवास करना, सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण

करना, ऐसा सुनते हैं। बापू! वह बातें दूसरी और धर्म दूसरी चीज़ है, भाई! वीतराग का धर्म कोई दूसरी चीज़ है। वह तो सब विकल्प की क्रिया के, राग की क्रिया की बातें हैं। समझ में आया? आहा..हा..! ऐ... प्रकाशदासजी! बहुत सूक्ष्म है, हों! आहा..हा..!

प्रभु कितना सूक्ष्म! कि जिसकी एक समय की पर्याय में श्रुतज्ञान की प्रगट पर्याय में लोकालोक समाहित हो जाये तो भी वह पर्याय बहुत जानने को बाकी रह गयी है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी उसकी एक समय की प्रगट पर्याय की इतनी ताकत! लोकालोक को जाने, तथापि जानने का हो वह पूरा जाने, ऐसी उसकी ताकत है। एक समय की प्रगट दशा में (ऐसी ताकत है) तो पूरा भगवान परिपूर्ण है। **पर्यायी आत्मा...** ऐ... प्रेमचन्दभाई! गजब बातें यह! धर्म नहीं परन्तु धर्म के नाम पर अभी तक सब ढकोसले किये हैं।

यह वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर, इन्द्र और गणधरों के समक्ष धर्म का ऐसा स्वरूप कहते थे। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्तर्मुख स्वभाव से भरपूर प्रभु को यहाँ पर्यायआत्मा कहा जाता है। आहा..! उसके **ज्ञान बिना...** उसके ज्ञान बिना **आत्मा, पर्यायस्वभावाला होता है;...** यह आत्मा तो एक समय की दशावाला हूँ, ऐसा यह मानता है। आहा..हा..! रागवाला माने, पुण्यवाला माने, कर्म के सम्बन्धवाला माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु एक समय की पर्यायस्वभाववाला मैं हूँ, यह मान्यता भी मिथ्यादृष्टि की है। यह सब कठिन बातें हैं, सेठी!

मुमुक्षु : एक समय की पर्यायवाला माना।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय जितना मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। त्रिकाल ज्ञायकभाव भगवान ध्रुवस्वरूप के ज्ञान बिना पर्यायस्वभाववाला चार गति में भटकता है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहा..हा..!

पर्यायी आत्मा के... वस्तु.. वस्तु... वस्तु.. भगवान अन्तरवस्तु, उसमें अनन्त गुणों का वास बसा हुआ है। ऐसी जो वस्तु, उसके ज्ञान बिना। यहाँ ऐसा नहीं कहा कि इसने यह दया, दान और व्रत नहीं पालन किये थे, इसलिए भटकता है। समझ में आया? ऐसा तो इसने अनन्त बार पालन किया है। यह तो भटकने के लक्षण हैं, यह यहाँ सिद्ध करते हैं। ऐई! आहा..हा..! मात्र भटकने का कारण, कि स्वयं वस्तु भगवान द्रव्यस्वभाव

चैतन्यध्रुव, जिसमें परिणाम का एक अंश का भी जिसके अन्दर प्रवेश नहीं, उस परिणाम से तो वह वस्तु भगवान खाली / शून्य है और उसके त्रिकाली स्वभावभाव से तो छलाछल भरा हुआ है, भरा हुआ छलाछल है। उसमें तो अनन्त केवलज्ञान और अनन्त आनन्द की पर्याय की सत्वरूप शक्ति तो पूरी भरी है। समझ में आया? मूल आत्मा की खबर नहीं और वह आत्मा सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। दूसरे सब बातें करे कि आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है, अद्वैत है, व्यापक है, अमुक है। इसका ध्यान करो। किसका ध्यान? वस्तु का भान न हो, उसे ध्यान कहाँ से आया? समझ में आया? आहा..हा..! देव-गुरु-शास्त्र के ज्ञान बिना, ऐसा इसमें नहीं कहा। नवतत्त्व के ज्ञान बिना भटकता है, ऐसा भी नहीं कहा।

मुमुक्षु : प्रभु!... भूमिका, इससे पहले इसका...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहले और बाद में कुछ है नहीं। यह बाद में करेगा, उसका बाद में रह जायेगा। ऐई!

मुमुक्षु : यह वस्तु समझानेवाले देव-गुरु-शास्त्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देव-गुरु-शास्त्र-वास्त्र उसमें कहीं है नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र जिस पर्याय ने जाने, वह पर्याय इसमें नहीं। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं है। ऐ.. लालजीभाई! यह तो सब क्रीड़ा अलग प्रकार की है। आहा..हा..! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मार्ग की रीति कोई अलग है। जगत कहीं चलता है और मानता है कि हम भगवान का धर्म करते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो दो बातें ली हैं कि **पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा,...** स्वयं **पर्यायस्वभावाला होता है;...** द्रव्यस्वभाववाला माना नहीं, इसलिए पर्यायस्वभाववाला माना है, ऐसा कहते हैं। गजब टीका, ओहो..हो..! टीका तो कोई टीका! इस एक लाईन में इतना भरा है। गजब बात है। आहा..हा..! **पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा,...** स्वयं अपने त्रिकाली द्रव्य के ज्ञान बिना, वह आत्मा पर्यायस्वभाववाला होता है। एक समय की अवस्थावाला वह मानता है। बस, इसलिए वह मिथ्यात्व है और उसके कारण चार गति के कारण का सेवन करता है। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े, महँगा लगे, इसलिए बेचारे इस

रास्ते से निकल गये और सस्ता पड़े उसमें घुस गये। सस्ता नहीं परन्तु महँगा पड़ेगा। भटकने का मार्ग है, सुन न! समझ में आया? लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो समझ में आये। प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करो, अपवास करो, अपवास आठ दिन में चौविध आहारत्याग कर डालो, लो। पर्यूषण के आठ दिन में चौविध आहारत्याग। तेरा लंघन है, सुन न अब। ऐ.. लंघन है, क्योंकि आत्मा क्या चीज़ है, वह ज्ञान बिना वह सब व्यर्थ है। समझ में आया? क्या करते हैं यह? महाजन के पास जाए और क्या करते हैं। लंघन करते हैं। क्या कहते हैं यह? जिद-हठ। वे हठ करते हैं यह। आत्मा अन्तर में भगवान परमेश्वर ने त्रिलोकनाथ ने कहा, ऐसा जो आत्मा का अन्तर अनन्त आनन्द का महास्वरूप, उसके भान बिना वे सब हठ करते हैं। हठ नहीं परन्तु कुछ दूसरा। पैसा माँगने के लिए बाबा आते हैं न? फिर पैसा देने में जरा देर लगे तो यहाँ छुरी मारे। हमें तो हिन्दी भाषा बहुत आती नहीं। यहाँ तो हमारी काठियावाड़ी भाषा है न। बाबा आते हैं न? बाबा! पैसा देने में थोड़ी देर लगे तो ऐसे छुरी लगावे। और बहुत कठिन हो जाए, इसलिए वह पैसा दे तो वापस उसे छुआकर और उसके खोली में डाल दे। पैसा ले ले वापस। वापस वह खून निकला हो न, उसे छुआकर अन्दर खोली में डाल दे। हमने देखा है। हमारी दुकान में आते थे। हमने तो बहुत देखा है न। उसमें भाई एक बार तप गये थे। नहीं दिया था तो ऐसा किया था। ऐसा सब चलता है।

यहाँ क्या कहना है? आहा..हा..! अरे! भगवान! तेरा अन्तर भगवान पर्यायआत्मा वस्तुस्वरूप के ज्ञान बिना जो कुछ तेरे एक अंश को भी मानकर जो कुछ क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, तप, वे सब त्रागा हैं। खून निकले और खून है। चार गति में भटकानेवाले वे भाव हैं। ऐसा कहते हैं। ऐई! मलूपचन्दभाई! ....रात्रि में नींद नहीं आती होगी? कहो समझ में आया इसमें? आहा..हा..!

कहते हैं कि है तो स्वभावभाववाला आत्मा। त्रिकाल आनन्द आदि वस्तुस्वभाव अन्दर है, ऐसी त्रिकाली शक्ति के स्वभाववाला तत्त्व है। उसके भान बिना, उसके ज्ञान बिना, उसकी श्रद्धा बिना, ऐसा आत्मा पर्यायस्वभाववाला एक समय की अवस्था के भाव को माननेवाला-जाननेवाला मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पहला-पहला है न आज तो अभी! सवा आठ से सवा नौ। वरना फिर सवा नौ का ध्यान रखना। क्योंकि पहला दिन है न। कहो समझ में आया इसमें? आहा..हा..! गजब बात की है, हों!

कहते हैं जिसे भगवान एक समय का प्रभु तू पूर्णमिदं पूरा आत्मा, अनन्त.. अनन्त.. आनन्द की दशा प्रगट परमात्मा को हो, वैसी अनन्त दशाओं को अन्दर समेटकर पड़ा है, ऐसा पिण्ड प्रभु, ऐसे आत्मा का जिसे स्वसन्मुख का ज्ञान नहीं, वह एक समय की पर्यायवाला, बहिर्मुखदृष्टिवाला है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! और बनिये बेचारे साधारण व्यापारी हों, अब उन्हें सामायिक करनी हो तो एक घण्टे, दो घण्टे मिलें। कर आवे। उसे ऐसा समझना कठिन पड़ता है। इसकी अपेक्षा अष्टमी का एक उपवास कर डालना। धूल भी नहीं। त्रागा है तेरा, सुन न! अधर्म है, वहाँ धर्म नहीं। ऐ.. चिमनभाई! भारी कठिन काम, भाई!

इसलिए शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम से आत्मा, व्यवहार से मनुष्य होता है,... भाषा देखो! आहा..हा..! पुस्तक है न वजुभाई? देखो! यह कोई अलौकिक बातें हैं। वहाँ जलगाँव में कुछ नहीं मिलेगा। वीतरागी परमात्मा तीर्थंकरदेव का स्वरूप यह है। लोग कहते हैं, हम धर्म करते हैं।....जाओ, भगवान कहे वह सच्चा। परन्तु क्या? अभी समझे बिना? सच्चा किसका तू? अपने भगवान कहते हैं, वह सच्चा। क्या भगवान कहते हैं, वह सच्चा? परन्तु तुझे भान तो कुछ नहीं। भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरा स्वभाव अर्थात् त्रिकाली स्वभाव वस्तु के ज्ञान बिना का तू खाली और एक समय की पर्याय में रहा हुआ, क्रीड़ा में खेलता हुआ, मिथ्यादृष्टि है। इसलिए ऐसा जीव **शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम से आत्मा, व्यवहार से मनुष्य होता है,...** वस्तु में नहीं परन्तु पर्याय की दृष्टिवाला है, इसलिए वह पर्याय में शुभाशुभपरिणाम करके मनुष्य होता है। पर्याय ज्ञानवाला आत्मा, वह मनुष्य होता ही नहीं। उसे शुभाशुभपरिणाम होते ही नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसे कहाँ चार में-गति में कहीं नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु परिणाम ही नहीं। उसे विकल्प कहाँ है? वह तो भिन्न है। समझ में आया?

कहते हैं, **इसलिए शुभाशुभरूप मिश्र परिणाम...** मनुष्य है न? मनुष्य। व्यवहार से मनुष्य होता है। निश्चय से कहीं आत्मा मनुष्य नहीं हो जाता, ऐसा कहते हैं। पर्यायदृष्टिवाला अर्थात् व्यवहारदृष्टिवाला व्यवहार से मनुष्य होता है, ऐसा कहते हैं। गजब भाई! लोगों के पास ऐसा धर्म परोसा गया है न, कि जिसमें धर्म की गन्ध नहीं। ऐसा परोसा गया है और थाली भरकर खाने बैठ गया है। पत्थर परोसे, पत्थर। पण्डितजी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग बात है। अभी यह बात कहाँ है ? कहीं का कहीं लगाते हैं। कहो, समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि यह आत्मा वस्तु भगवान आत्मा, सिद्धसमान अपना स्वरूप। अरे! सिद्ध की पर्याय का सदृशपना भी जिसके द्रव्य को लागू नहीं पड़ता। ऐसी सिद्ध की अनन्त पर्यायें जिसके अन्तर में, आत्मा में है, ऐसा यह भगवान आत्मा देह के परमाणु के मन्दिर में अन्दर विराजमान है। जो तीर्थंकर, सर्वज्ञ हुए, वे सब वे दशाएँ कहाँ से आयी ? वह अन्तर वस्तु के स्वभाव में थी, उसमें से आयी है। ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना के प्राणी अनादिकाल से शुभ और अशुभ मिश्रभाव करे (और मनुष्य हों)। चार गति में भटकें। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

भगवान इस देह में चैतन्यमूर्ति प्रभु (विराजमान है)। ये रजकण तो मिट्टी की हड्डियाँ हैं ये तो। उनसे (भिन्न) अमृत का सागर अन्दर प्रभु (विराजमान है)। उसके भान बिना, उसके ज्ञान बिना, उसका आश्रय लिये बिना, अनादि से अज्ञानी एक समय की दशा की क्रीड़ा में रमते हुए, उसे शुभाशुभपरिणाम हों, तब मनुष्य होता है। व्यवहार से मनुष्य होता है; निश्चय से कहीं आत्मा, मनुष्य नहीं होता। आहा..हा.. ! **उसका मनुष्याकार, वह मनुष्यपर्याय है;...** लो, ठीक। **उसका मनुष्याकार, वह मनुष्यपर्याय है;...** आहा..हा.. ! अलग प्रकार की टीका ही गजब की है। आहा..हा.. !

केवल अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है,... नारकी में अनन्त बार गया क्यों ? (इसलिए) कि पर्यायदृष्टिवाला, एक समय की अवस्था की क्रीड़ा में रमता हुआ, वस्तु के स्वभाव की सन्मुखता को छोड़ता हुआ, एक समय की दशा में रमता हुआ, इसने नरक के ऐसे अशुभपरिणाम किये (कि वह) मरकर नरक में गया। पर्यायदृष्टिवाला ऐसे भाव करे, वह नरक में जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दूसरे प्रकार से कहें तो मिथ्यादृष्टि की ही यह व्याख्या है। पर्यायस्वभाववाला अर्थात् ही मिथ्यादृष्टि। आहा..हा.. ! अभी तो यह नियमसार चलता है। दोपहर को समयसार नाटक चलता है। दोनों बार यह टीका चलती है, लो यह तो समझने की चीज़ है। वाद-विवाद से कुछ पार पड़े ऐसा नहीं है। आहा..हा.. !

वस्तु भगवान आत्मा, कहते हैं कि अपनी जाति, वह तो नित्यानन्द की जाति है। पूर्ण शान्ति और पूर्ण ज्ञान की जातिवाला तत्त्व आत्मा है। ऐसे पूर्ण आत्मा को कृतकृत्य है, परिपूर्ण है, अचल है, अविनाशी है, ध्रुव है, नित्य है, अभेद है। ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना, उसके भान बिना इसने ऐसे मिश्र परिणाम भी अनन्त बार किये हैं। इसलिए इसे मनुष्यपना मिला, अशुभभाव किये (तो) नरक हुआ, नारकी हुआ। सम्यग्दृष्टि नारकी और मनुष्य नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि तो आत्मा के द्रव्यस्वभाव के भानवाला है, उसकी भान की दशा में तो वीतरागता ही उत्पन्न होती है। इसलिए उसे चार गति और चार गति के कारण, सम्यग्दृष्टि उनसे दूर हो गया है। समझ में आया? जेठाभाई! दूर हो गया। आहा..हा..!

अशुभभाव करने से... उसमें मिश्रपरिणाम से कहा था और यहाँ **अशुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, नारक होता है,...** ऐसा कहा है। उसमें परिणाम कहे थे, परन्तु यहाँ समझ लेना। केवल अशुभभाव से और उसका अशुभकर्म बँधने से **व्यवहार से आत्मा, नारक होता है,...** वह आत्मा अन्तरस्वरूप के सम्यक् भान बिना पंच महाव्रत पालनेवाला जैन का साधु भी अनन्त बार हुआ। हजारों रानियाँ छोड़कर जंगल में रहनेवाला। परन्तु पर्यायस्वभाववाला, द्रव्यस्वभाववाला नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! **उसका नारक-आकार वह नारकपर्याय है;...**

किंचित्शुभमिश्रित मायापरिणाम से आत्मा, व्यवहार से तिर्यञ्चकाय में जन्मता है,... किंचित्शुभमिश्रित लिया। माया / कपट / कुटिलता। आत्मा का दर्शन नहीं। आत्मा का ज्ञान नहीं, आत्मा कौन है, उसका भान नहीं। उस भानरहित, एक समय की पर्याय में ही खड़ा रहा हुआ, उसे ऐसे माया के-कपट के परिणाम हुए, (वह) मरकर ढोर होता है। कहो, समझ में आया? पशु-पशु। किंचित्शुभ थोड़ा साथ में। **आत्मा, व्यवहार से तिर्यञ्चकाय में जन्मता है, उसका आकार वह तिर्यञ्चपर्याय है....**

और केवल शुभकर्म से व्यवहार से आत्मा, देव होता है,... दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, करुणा, कोमलता, ऐसे परिणाम पर्यायदृष्टिवाले को होते हैं। क्या कहा, समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को होते हैं। सम्यग्दृष्टि को वे परिणाम नहीं होते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..! **केवल शुभ...** अकेले पुण्यपरिणाम किये, देव होता है। आत्मा अन्तर आनन्द की मूर्ति भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वैसा वस्तु के स्वभाव का

ज्ञान नहीं, वस्तु के स्वभाव की दृष्टि सम्यक् नहीं, एक समय की पर्याय की लीनता में मिथ्याज्ञान और मिथ्यादृष्टि ऐसे दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा अनन्त बार किये और उनके कारण देव हुआ। समझ में आया?

शुभकर्म से... कहा है न? उसमें (तिर्यंच में) माया परिणाम लिये थे। उसमें (मनुष्य में) समुच्चय परिणाम पहले, दूसरे में अशुभकर्म लिया, तीसरे में वापस माया परिणाम लिये, चौथे में वापस केवल शुभकर्म लिया। यह तो सब एक प्रकार बताते हैं। परिणाम और कर्म... परिणाम और कर्म... समझ में आया? केवल शुभभाव से अकेले शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या ऐसे महीने-महीने के वर्षी तप का पारणा आदि के भाव है न, वे शुभभाव हैं, परन्तु है मिथ्यादृष्टि क्योंकि उसे स्वभाव की दृष्टि और वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं है। ऐसी पर्याय के एक समय के अंश को माननेवाले मिथ्यादृष्टि ऐसे परिणाम करें तो देव होते हैं। **उसका आकार वह देवपर्याय है।** लो, आकार, हों! **यह व्यंजनपर्याय है।** वह व्यवहारव्यंजनपर्याय मिथ्यादृष्टि को मिलती है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को नहीं। क्योंकि वह तो चार गति और चार गति के भाव से भिन्न है। स्वभाव से अभेद है और पर से भिन्न है। आहा..!

मुमुक्षु : व्यवहार से मुक्त?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुक्त ही है। व्यवहार से मुक्त ही है। यह तो पर्यायदृष्टिवाला तो व्यवहार से सहित ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा धर्म कहाँ से निकाला होगा यह? कोई कहे, समयसार, यह नया निकाला लगता है। कहाँ से क्या, अनादि का मार्ग भगवान का यह है। किसी का निकाला हुआ है? अनादि तीर्थंकर केवली परमात्मा ऐसा कहते आये हैं। अभी महाविदेह में भगवान विराजते हैं। वे विराजते हैं, वे कहते हैं, अनन्त होंगे वे ऐसा ही कहेंगे और ऐसी ही उनकी रीति है। आहा..हा..! सत्य हो, ऐसा सत्य कहें।

यह व्यंजनपर्याय है। इस पर्याय का विस्तार अन्य आगम में देख लेना चाहिए। यहाँ कहना है क्या? कि ऐसी व्यंजनपर्याय चार गति की मिथ्यादृष्टि को मिलती है। जिसे आत्मा के स्वभाव की दृष्टि का भान नहीं, उसे अंश पर जिसकी लीनता है, वह परिणाम में रमनेवाला है। परिणाम परिणामी के साथ में जिसने जोड़े नहीं हैं। समझ में आया? वे बहियाँ पढ़ा करे तो उसमें से कुछ ऐसा नहीं निकलता। आहा..हा..! यह तो भगवान के दरबार की बात है, भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ... आहा..हा..! ऐसी बात अन्यत्र कहीं है नहीं।

श्लोक-२७

अब, १५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(मालिनी)

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टिः,
सहजपरमतत्त्वाभ्यासनिष्णातबुद्धिः ।
सपदि समयसारान्नान्यदस्तीति मत्त्वा,
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।२७।।

(वीरछन्द)

बहु विभाव होने पर भी जो करते परम तत्त्व अभ्यास।
अतः प्रवीण हुई है जिनकी बुद्धि शुद्धदृष्टि का वास॥
''समयसार से अन्य कुछ नहीं'' वे नर यह श्रद्धा करते।
शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दर नारी के वल्लभ होते॥२७॥

श्लोकार्थ :—बहु विभाव होने पर भी, सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है - ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष, 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है' — ऐसा मानकर, शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दरी का वल्लभ होता है।।२७॥

श्लोक-२७ पर प्रवचन

अब, १५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं — लो!

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टिः,
सहजपरमतत्त्वाभ्यासनिष्णातबुद्धिः ।

सपदि समयसारान्नान्यदस्तीति मत्त्वा,
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।२७।।

आहा..हा..! देखो! क्या कहते हैं? कहते हैं कि अज्ञानी के तो विभावभाव जो हैं, वह पर्यायबुद्धिवाला है, इसलिए चार गति का कारण है। अब धर्मी को? जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य की दृष्टि हुई, द्रव्यस्वभाव का भान हुआ, उसे **विभाव होने पर भी,...** उसकी पर्याय में विभाव **होने पर भी, सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** आहा..हा..! समझ में आया? यह तो आत्मा भगवान, सहजपरमतत्त्व स्वभाविक परमस्वरूप भगवान आत्मा के **अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** कहो, समझ में आया? वह पर्यायस्वभाववाला लिया। अब द्रव्यस्वभाववाले को क्या होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बहु विभाव होने पर भी,... धर्मी जीव को सम्यग्दृष्टि को वस्तु जो त्रिकाल द्रव्यस्वभाव, उसका उसमें अभ्यास होने से इस विभाव का अभ्यास उसे नहीं है, कहते हैं। आहा..हा..! विभाव होने पर भी विभाव का अभ्यास ज्ञानी को नहीं है। **सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है...** निपुण है न? आया था न? निष्णात है। यह लोग नहीं कहते? इस बावत् में यह व्यक्ति निष्णात है। भगवान कहते हैं कि जिसकी बुद्धि आत्मा के लिये निष्णात है। **सहज परमतत्त्व के अभ्यास...** करने में, अन्तर्मुख जाने में जिसकी बुद्धि निष्णात है। आहा..हा..!

ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष,... अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है, ऐसा लिया। ज्ञान लिया। **ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष, 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है'...** ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, इसके सिवाय दूसरी कोई चीज़ नहीं है। **ऐसा मानकर, शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दरी का वल्लभ होता है।** वह (मिथ्यादृष्टि) चार गति में भटकता है। आत्मा के वस्तु पर्याय, आत्मा के भान बिना और श्रद्धा अनुभव बिना, एक समय की पर्याय की लीनतावाला चार गति में भटकता है। वस्तुस्वभाव होने पर भी उसका ज्ञान नहीं है, इसलिए इसमें भटकता है। इसको विभाव होने पर भी स्वभाविक परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि निष्णात हो गयी है।

अहो! मैं तो पुण्य-पाप की क्रिया के विकल्प से भी भिन्न हूँ। यह दया, दान, व्रत

के विकल्प भी विभाव और आस्रव हैं। ऐसा जिसे आत्मतत्त्व का अन्तर में अभ्यास हुआ है, उसे समयसार से अधिक कुछ नहीं है। इस भगवान आत्मा से उत्कृष्ट कोई चीज़ नहीं है। ऐसी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान की रमणता होने से। देखो न! है न? पहले ज्ञान लिया और फिर दृष्टि ली। समयसार जैसा दूसरा कुछ नहीं है। उसमें रमता है। **शीघ्र परमश्रीरूपी...** वह अल्पकाल में मुक्तिरूपी सुन्दरी का वल्लभ अर्थात् मुक्तिपने की पर्याय को प्राप्त होता है। वह (पूर्व कथित) मिथ्यादृष्टि जीव चार गति को प्राप्त करता है; सम्यग्दृष्टि मुक्ति को पाता है, ऐसी दो बातें ली हैं। विशेष लेंगे.....

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)